

## **Chapter बावन**

### **भगवान् कृष्ण के लिए रुक्मिणी-संदेश**

इस अध्याय में बतलाया गया है कि किस तरह बलराम तथा कृष्ण मानो भयभीत होकर द्वारका चले गये। तब कृष्ण ने एक ब्राह्मण के मुख से रुक्मिणी का सन्देश सुना और उसे अपनी पत्नी बना लिया।

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा दया दिखाये जाने पर राजा मुचुकुन्द ने उन्हें नमस्कार किया और उनकी प्रदक्षिणा की। तब राजा ने वह गुफा छोड़ दी और देखा कि जब से वह सोया था तब की अपेक्षा अब सारे मनुष्य, पेड़-पौधे एवं पशु छोटे हो गये हैं। इससे उसने यह निष्कर्ष निकाला कि कलियुग निकट है। इस तरह भौतिक संसार से विरक्त होकर राजा ने भगवान् श्रीहरि की पूजा करनी प्रारम्भ कर दी।

श्रीकृष्ण मथुरा लौट आये जो अब भी बर्बरों की सेना से घिरा था। उन्होंने इस सेना को नष्ट किया, सारे सैनिकों की बहुमूल्य वस्तुएँ एकत्र कीं और द्वारका के लिए रवाना हो गये। तभी जरासन्ध तेईस अक्षौहिणी सेना लेकर वहाँ आ गया। बलराम तथा कृष्ण ने ऐसा अभिनय किया मानो वे डर गये हैं अतः वे अपनी बहुमूल्य वस्तुएँ छोड़ कर दूर भाग गये। चूँकि जरासन्ध उनकी वास्तविक शक्ति नहीं जानता था अतएव उसने उनका पीछा किया। काफी दूर भाग आने के बाद राम तथा कृष्ण प्रवर्षण-पर्वत के समीप आये और उस पर चढ़ने लगे। जरासन्ध ने सोचा कि वे दोनों किसी गुफा में छिप गये हैं अतएव उनकी तलाश करने लगा। उन्हें न पाकर उसने पर्वत के चारों ओर आग लगा दी। जब पर्वत की ढलानों की वनस्पति जलने लगी तो कृष्ण तथा बलराम पर्वत की चोटी से कूद पड़े। जब वे जरासन्ध तथा उसके अनुयायियों की आँख बचाकर भूमि पर आ गये तो वे समुद्र के भीतर तैर रहे द्वारका के दुर्ग में लौट आये। जरासन्ध को विश्वास हो गया कि राम तथा कृष्ण अग्नि में जलकर राख हो गये हैं अतः वह सेना लेकर अपने राज्य वापस लौट गया।

इस विन्दु पर महाराज परीक्षित ने प्रश्न किया, तो श्रीशुकदेव गोस्वामी ने भगवान् श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणी के विवाह की कथा कहनी प्रारम्भ की। विदर्भ के राजा भीष्मक की युवा पुत्री रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के सौन्दर्य, बल तथा अन्य उत्तम गुणों के विषय में सुन रखा था इसलिए उसने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि वे उसके अनुरूप पति होंगे। भगवान् कृष्ण भी उससे विवाह करना चाहते थे। यद्यपि रुक्मिणी के अन्य सम्बन्धी उसके कृष्ण से विवाह से सहमत थे किन्तु उसका भाई रुक्मी कृष्ण से द्वेष रखता था इसलिए उसने इस विवाह का विरोध किया। रुक्मी अपनी बहन का विवाह शिशुपाल से करना चाहता था। रुक्मिणी अनमनी होकर वैवाहिक तैयारियों में लग गई किन्तु उसने एक विश्वस्त ब्राह्मण को एक पत्र देकर कृष्ण के पास भेज दिया।

जब यह ब्राह्मण द्वारका आया तो श्रीकृष्ण ने उसका भलीभाँति उचित पूजा तथा अन्य प्रकार से

सम्मानित करके आतिथ्य किया। फिर उस ब्राह्मण से आने का कारण पूछा। ब्राह्मण ने रुक्मिणी का पत्र खोला और भगवान् कृष्ण को दिखलाया जिसे कृष्ण के दूत ने पढ़ा। रुक्मिणीदेवी ने लिखा था, “हे स्वामी! जब से मैंने आपके विषय में सुना है तब से मैं आपके प्रति पूरी तरह से आकृष्ट हूँ। कृपया शिशुपाल के साथ मेरा विवाह होने के पूर्व अवश्य आयेँ और मुझे ले जाँय। कुलप्रथा के अनुसार मैं अपने विवाह के एक दिन पूर्व देवी अम्बिका का दर्शन करने जाऊँगी। आपके प्रकट होने और आसानी से मेरे अपहरण का यही अवसर सबसे उपयुक्त होगा। यदि आप मुझ पर इतनी कृपा नहीं करेंगे तो मैं उपवास तथा कठिन व्रत करके अपने प्राण त्याग दूँगी। तब सम्भवतः मैं अगले जीवन में आपको पा सकूँगी।”

भगवान् कृष्ण को वह पत्र सुनाने के बाद ब्राह्मण ने उनसे विदा ली ताकि वह अपनी धार्मिक दिनचर्या पूरी कर सके।

श्रीशुक उवाच

इत्थं सोऽनग्रहीतोऽन्ना कृष्णेनेक्ष्वाकु नन्दनः ।  
तं परिक्रम्य सन्नम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इत्थम्—इस प्रकार; सः—वह; अनुग्रहीतः—दया दिखलाया गया; अङ्ग—हे प्रिय (परीक्षित महाराज); कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; इक्ष्वाकु-नन्दनः—इक्ष्वाकुवंशी मुचुकुन्द; तम्—उन्हें; परिक्रम्य—परिक्रमा करके; सन्नम्य—नमस्कार करके; निश्चक्राम—बाहर चला गया; गुहा—गुफा के; मुखात्—मुँह से होकर।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजा, इस प्रकार कृष्ण द्वारा दया दिखाये गये मुचुकुन्द ने उनकी प्रदक्षिणा की और उन्हें नमस्कार किया। तब इक्ष्वाकुवंशी प्रिय मुचुकुन्द गुफा के मुँह से होकर बाहर आये।

संवीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् ।  
मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

संवीक्ष्य—देखकर; क्षुल्लकान्—छोटे छोटे; मर्त्यान्—मनुष्यों को; पशून्—पशुओं को; वीरुत्—लताओं; वनस्पतीन्—तथा वृक्षों को; मत्वा—मान कर; कलि-युगम्—कलियुग को; प्राप्तम्—आया हुआ; जगाम—चला गया; दिशम्—दिशा में; उत्तराम्—उत्तरी।

यह देखकर कि सभी मनुष्यों, पशुओं, लताओं तथा वृक्षों के आकार अत्यधिक छोटे हो गये हैं और इस तरह यह अनुभव करते हुए कि कलियुग सन्निकट है, मुचुकुन्द उत्तर दिशा की

ओर चल पड़े।

**तात्पर्य :** इस श्लोक में कई महत्वपूर्ण शब्द हैं। संस्कृत के एक प्रमाणित कोश में *क्षुल्लक* के “क्षुद्र, निम्न, निर्धन, दुष्ट, द्वेषी, परित्यक्त, दुखित” इत्यादि अर्थ पाये जाते हैं। ये सारे लक्षण कलियुग के हैं और ये सारे गुण मनुष्यों, पशुओं, पौधों तथा वृक्षों में पाये जाते हैं। हम लोग, जो अपने और अपने पर्यावरण के प्रति इतने मुग्ध हैं, पहले के युगों के श्रेष्ठ सौन्दर्य तथा उस समय की जीवित अवस्थाओं की कदाचित् कल्पना कर सकते हैं।

अन्तिम चरण में *जगाम दिशम् उत्तराम्* को इस प्रकार समझा जा सकता है—भारत की उत्तर दिशा में जाने पर सबसे ऊँची हिमालय की पर्वत श्रेणी मिलती है। आज भी वहाँ अनेक सुन्दर चोटियाँ तथा घाटियाँ हैं जहाँ तपस्या तथा ध्यान के योग्य शान्त कुटियाँ हैं। इस तरह वैदिक संस्कृति में “उत्तर दिशा में जाने” का अर्थ होता है सामान्य समाज की सुविधाओं को त्याग कर आध्यात्मिक उन्नति के लिए कठोर तपस्या करने के लिए हिमालय पर्वत में जाना।

तपःश्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः ।

समाधाय मनः कृष्णो प्राविशद्गन्धमादनम् ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

तपः—तपस्या; श्रद्धा—श्रद्धा से; युतः—युक्त; धीरः—गम्भीर; निःसङ्गः—भौतिक संगति से विरक्त; मुक्त—स्वतंत्र; संशयः—सन्देहों से; समाधाय—समाधि में स्थिर करके; मनः—अपना मन; कृष्णो—कृष्ण में; प्राविशत्—प्रवेश किया; गन्धमादनम्—गन्धमादन नामक पर्वत पर।

भौतिक संगति से परे तथा सन्देह से मुक्त सौम्य राजा तपस्या के महत्व के प्रति विश्वस्त था।

अपने मन को कृष्ण में लीन करते हुए वह गन्धमादन पर्वत पर आया।

**तात्पर्य :** गन्धमादन नाम सुहावनी सुगन्धों का सूचक है। निस्सन्देह, गन्धमादन जंगली फूलों की सुगंध से तथा जंगली शहद से और दूसरी प्राकृतिक सुगन्धों से पूर्ण था।

बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ।

सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥

#### शब्दार्थ

बदरी-आश्रमम्—बदरिकाश्रम में; आसाद्य—पहुँच कर; नर-नारायण—नर तथा नारायण नामक भगवान् के दो अवतारों का; आलयम्—आवास; सर्व—समस्त; द्वन्द्व—द्वैतताओं को; सहः—सहते हुए; शान्तः—शान्त; तपसा—कठिन तपस्या से; आराधयत्—पूजा; हरिम्—भगवान् को।

वहाँ वह नर-नारायण के धाम बदरिकाश्रम आया जहाँ पर समस्त द्वन्द्वों को सहते हुए उसने कठोर तपस्या करके भगवान् हरि की शान्तिपूर्वक पूजा की।

भगवान्पुनराब्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ।  
हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**

भगवान्—भगवान्; पुनः—फिर से; आब्रज्य—लौटकर; पुरीम्—अपनी नगरी में; यवन—यवनों द्वारा; वेष्टिताम्—घिरी; हत्वा—मारकर; म्लेच्छ—यवनों की; बलम्—सेना को; निन्ये—ले आये; तदीयम्—उनकी; द्वारकाम्—द्वारका को; धनम्—सम्पत्ति।

भगवान् मथुरा नगरी लौट आये जो अब भी यवनों से घिरी थी। तत्पश्चात् उन्होंने बर्बर यवनों की सेना नष्ट की और उन यवनों की बहुमूल्य वस्तुएँ द्वारका ले गये।

तात्पर्य : इस श्लोक से स्पष्ट है कि अकेला कालयवन पर्वत गुफा तक भगवान् कृष्ण का पीछा करता गया। जब घिरी हुई मथुरा नगरी में कृष्ण लौटकर आये तो उन्होंने यवनों की विशाल सेना को समूल नष्ट किया।

नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ।  
आजगाम जरासन्धस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**

नीयमाने—ले जाते समय; धने—सम्पत्ति को; गोभिः—बैलों द्वारा; नृभिः—मनुष्यों द्वारा; च—तथा; अच्युत—भगवान् कृष्ण द्वारा; चोदितैः—लगाये गये; आजगाम—वहाँ आया; जरासन्धः—जरासन्ध; त्रयः—तीन; विंशति—बीस; अनीक—सेनाओं का; पः—नायक।

जब यह सम्पदा भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार बैलों तथा मनुष्यों द्वारा ले जाई जा रही थी तो जरासन्ध तेईस सैन्यटुकड़ियों के प्रधान के रूप में वहाँ प्रकट हुआ।

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ।  
मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥ ७ ॥

**शब्दार्थ**

विलोक्य—देखकर; वेग—लहरों की; रभसम्—डरावनापन; रिपु—शत्रु की; सैन्यस्य—सेनाओं का; माधवौ—दोनों माधव (कृष्ण तथा बलराम); मनुष्य—मनुष्य जैसा; चेष्टाम्—आचरण; आपन्नौ—धारण करते हुए; राजन्—हे राजा (परीक्षित); दुद्रुवतुः—भाग गये; द्रुतम्—तेजी से।

हे राजन्, शत्रु की सेना की भयंकर हलचल को देखकर माधव-बन्धु मनुष्य का-सा व्यवहार करते हुए तेजी से भाग गये।

विहाय वित्तं प्रचुरमभीतौ भीरुभीतवत् ।  
पद्भ्यां पलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥

**शब्दार्थ**

विहाय—छोड़ कर; वित्तम्—धन; प्रचुरम्—पर्याप्त; अभीतौ—वस्तुतः बिना डरे; भीरु—डरपोकों के समान; भीत-वत्—डरे जैसे; पद्भ्याम्—अपने पाँवों से; पद्म—कमलों की; पलाशाभ्याम्—पंखड़ियों जैसे; चेलतुः—चले गये; बहु-योजनम्—कई योजन तक ( एक योजन आठ मील से कुछ अधिक की दूरी है )।

प्रचुर सम्पत्ति को छोड़ कर निर्भय किन्तु भय का स्वाँग करते हुए वे अपने कमलवत् चरणों से पैदल अनेक योजन चलते गये।

पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली ।  
अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥

**शब्दार्थ**

पलायमानौ—भागते हुए; तौ—उन दोनों को; दृष्ट्वा—देखकर; मागधः—जरासन्ध; प्रहसन्—जोर से हँसते हुए; बली—बलवान; अन्वधावत्—पीछे पीछे दौड़ा; रथ—रथ; अनीकैः—तथा सैनिकों के साथ; ईशयोः—दोनों प्रभुओं का; अप्रमाण-वित्—कार्यक्षेत्र से अनभिज्ञ।

उन दोनों को भागते देखकर शक्तिशाली जरासन्ध अट्टाहास करने लगा और सारथियों तथा पैदल सैनिकों को साथ लेकर उनका पीछा करने लगा। वह दोनों प्रभुओं के उच्च पद को समझ नहीं सका।

प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गमारुहतां गिरिम् ।  
प्रवर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १० ॥

**शब्दार्थ**

प्रद्रुत्य—पूरे वेग से दौड़कर; दूरम्—काफी दूरी; संश्रान्तौ—थके हुए; तुङ्गम्—खूब ऊँचे; आरुहताम्—चढ़ गये; गिरिम्—पर्वत पर; प्रवर्षण-आख्यम्—प्रवर्षण नामक; भगवान्—इन्द्र; नित्यदा—सदैव; यत्र—जहाँ; वर्षति—वर्षा करता है।

काफी दूरी तक भागने से थक कर चूर-चूर दिखते हुए दोनों प्रभु प्रवर्षण नामक ऊँचे पर्वत पर चढ़ गये जिस पर इन्द्र निरंतर वर्षा करता है।

गिरौ निलीनावाजाय नाधिगम्य पदं नृप ।  
ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥ ११ ॥

**शब्दार्थ**

गिरौ—पर्वत पर; निलीनौ—छिपे हुए; आज्ञाय—अवगत होकर; न अधिगम्य—न ढूँढ़कर; पदम्—उनका स्थान; नृप—हे राजा (परीक्षित); ददाह—आग लगा दी; गिरिम्—पर्वत में; एधोभिः—ईधन से; समन्तात्—चारों ओर; अग्निम्—आग; उत्सृजन्—उत्पन्न करते हुए।

यद्यपि जरासन्ध जानता था कि वे दोनों ही पर्वत में छिपे हैं किन्तु उसे उनका कोई पता नहीं चल सका। अतः हे राजा, उसने सभी ओर लकड़ियाँ रखकर पर्वत में आग लगा दी।

तात्पर्य : स्पष्ट है कि हम भगवान् की एक दिव्य लीला देख रहे हैं। यद्यपि भागवत में कहा गया है कि दोनों प्रभु कृष्ण तथा बलराम थक कर चूर-चूर थे, फिर भी वे तेजी से इतने ऊँचे पर्वत पर चढ़कर तुरन्त ही भूमि पर कूद सके। ऋषियों द्वारा दिये गये पूरे चित्र की उपेक्षा करके इधर-उधर से कुछ वर्णनों को उठा लेना मूर्खतापूर्ण तथा अतार्किक होगा। स्पष्ट है कि हम भगवान् को उनकी दिव्य लीलाओं के मध्य देख रहे हैं, हम किसी सामान्य मनुष्य को नहीं देख रहे। जब यह घटना घटी तो भगवान् कृष्ण तथा भगवान् बलराम तब भी तरुण थे और इन विवरणों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हास्यास्पद जरासन्ध से दूर भागना, पर्वत पर दौड़ते हुए चढ़ना और फिर वहाँ से नीचे कूद पड़ना और उस असुर को लगातार मूर्ख बनाना जिसने आत्मविश्वास कभी नहीं खोया, उन दोनों को कितना आनन्द देता रहा होगा। द्वेष या कलहप्रियता से रहित होकर देखने पर भगवान् की लीलाएँ अतीव मनोरंजक लगती हैं।

तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ।  
दशैकयोजनात्तुङ्गान्निपेततुरधो भुवि ॥ १२ ॥

#### शब्दार्थ

ततः—उस (पर्वत) से; उत्पत्य—कूद कर; तरसा—जल्दी से; दह्यमान—जलते हुए; तटात्—छोरों से; उभौ—दोनों; दश-एक—ग्यारह; योजनात्—योजन; तुङ्गात्—उच्च; निपेततुः—वे गिरे; अधः—नीचे; भुवि—जमीन पर।

तब वे दोनों सहसा उस जलते हुए ग्यारह योजन ऊँचे पर्वत से नीचे कूद कर जमीन पर आ गिरे।

तात्पर्य : ग्यारह योजन ९० मील के लगभग है।

अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ।  
स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥ १३ ॥

#### शब्दार्थ

अलक्ष्यमाणौ—न दिखाई देते हुए; रिपुणा—अपने शत्रुओं द्वारा; स—सहित; अनुगेन—अपने अनुयायियों के साथ; यदु—यदुओं के; उत्तमौ—दो अतीव उत्तम; स्व-पुरम्—अपनी पुरी ( द्वारका ) में; पुनः—फिर; आयातौ—गये; समुद्र—समुद्र; परिखाम्—रक्षा-खाई से युक्त; नृप—हे राजन्।

अपने प्रतिपक्षी या उसके अनुचरों द्वारा न दिखने पर, हे राजन्, वे दोनों यदु श्रेष्ठ अपनी द्वारकापुरी लौट गये जिसकी सुरक्षा-खाई समुद्र थी।

सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ।

बलमाकृष्य सुमहन्मगधान्मागधो ययौ ॥ १४ ॥

#### शब्दार्थ

सः—वह; अपि—भी; दग्धौ—अग्नि में जले हुए दोनों; इति—इस प्रकार; मृषा—झूठे ही; मन्वानः—सोचते हुए; बल-केशवौ—बलराम तथा कृष्ण; बलम्—अपनी सेना; आकृष्य—पीछे हटाकर; सु-महत्—विशाल; मगधान्—मगधों के राज्य में; मागधः—मगधों का राजा; ययौ—चला गया।

यही नहीं, जरासन्ध ने गलती से सोचा कि बलराम तथा कृष्ण अग्नि में जल कर मर गये हैं।

अतः उसने अपनी विशाल सेना पीछे हटा ली और मगध राज्य को लौट गया।

आनर्ताधिपतिः श्रीमात्रैवतो रैवतीं सुताम् ।

ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम् ॥ १५ ॥

#### शब्दार्थ

आनर्त—आनर्त प्रदेश का; अधिपतिः—अधीश्वर; श्रीमान्—ऐश्वर्यवान्; रैवतः—रैवत; रैवतीम्—रैवती नामक; सुताम्—उसकी पुत्री; ब्रह्मणा—ब्रह्मा द्वारा; चोदितः—आज्ञा दिया गया; प्रादात्—दिया; बलाय—बलराम को; इति—इस प्रकार; पुरा—प्राचीन काल में; उदितम्—उल्लिखित।

ब्रह्मा के आदेश से आनर्त के वैभवशाली राजा रैवत ने अपनी पुत्री रैवती का विवाह बलराम से कर दिया। इसका उल्लेख पहले ही हो चुका है।

भगवानपि गोविन्द उपयेमे कुरुद्वह ।

वैदर्भी भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥ १६ ॥

प्रमथ्य तरसा राज्ञः शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ।

पश्यतां सर्वलोकानां ताक्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—निस्सन्देह; गोविन्दः—कृष्ण ने; उपयेमे—ब्याहा; कुरु-उद्वह—हे कुरुओं में वीर ( परीक्षित ); वैदर्भीम्—रुक्मिणी को; भीष्मक-सुताम्—राजा भीष्मक की पुत्री; श्रियः—लक्ष्मी को; मात्राम्—स्वांश; स्वयम्-वरे—अपनी रुचि से; प्रमथ्य—दमन करके; तरसा—बल से; राज्ञः—राजाओं को; शाल्व-आदीन्—शाल्व इत्यादि; चैद्य—शिशुपाल के; पक्ष-गान्—पक्षधरों को; पश्यताम्—देखते देखते; सर्व—सारे; लोकानाम्—लोगों के; ताक्ष्य-पुत्रः—ताक्ष्य का पुत्र ( गरुड़ ); सुधाम्—स्वर्ग का अमृत; इव—सदृश।

हे कुरुवीर, भगवान् गोविन्द ने भीष्मक की पुत्री वैदर्भी ( रुक्मिणी ) से विवाह किया जो



साक्षात् लक्ष्मी की अंश थी। भगवान् ने उसकी इच्छा से ही ऐसा किया और इस कार्य के लिए उन्होंने शाल्व तथा शिशुपाल के पक्षधर अन्य राजाओं को परास्त किया। दरअसल सबों के देखते देखते श्रीकृष्ण रुक्मिणी को उसी तरह उठा ले गये जिस तरह निःशंक गरुड़ देवताओं से अमृत चुरा कर ले आया था।

**तात्पर्य :** श्रील जीव गोस्वामी ने इन दोनों श्लोकों की पाण्डित्यपूर्ण टीका की है : *श्रियो मात्राम्* शब्द बताते हैं कि सुन्दर रुक्मिणी शाश्वत लक्ष्मीदेवी की अंशरूप हैं। इसलिए वे भगवान् की दुलहन (वधू) बनने योग्य हैं। जैसाकि *ब्रह्म-संहिता* (५.६७) में कहा गया है—*श्रियः कान्ता कान्तः परमपुरुषः*—वैकुण्ठ की सारी प्रेमिकाएँ लक्ष्मी देवियाँ हैं और प्रेमी भगवान् हैं। इस तरह श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि श्रीमती रुक्मिणीदेवी श्रीमती राधारानी की स्वांश हैं। *पद्म पुराण* के *कार्तिक-माहात्म्य* में कहा गया है—*कैशोरे गोपकन्यास्ता यौवने राजकन्यकाः*—कृष्ण ने किशोरावस्था में ग्वालों की कन्याओं के साथ आनन्द लूटा और यौवनावस्था में राजाओं की कन्याओं के साथ। इसी प्रकार *स्कन्द पुराण* में कथन है—*रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने*—जो स्थान राधा का वृन्दावन के जंगल में है, वही रुक्मिणी का स्थान द्वारका में है।

*स्वयंवरे* शब्द का अर्थ है “अपनी इच्छा से।” यद्यपि यह शब्द प्रायः उस औपचारिक वैदिक अनुष्ठान का सूचक है, जिसमें कुलीनवंशी राजकुमारी अपना पति स्वयं चुन सकती थी किन्तु यहाँ पर यह शब्द रुक्मिणी के साथ कृष्ण के विवाह से सम्बन्धित अनौपचारिक एवं अभूतपूर्व वातावरण का सूचक है। वस्तुतः श्रीकृष्ण तथा श्रीमती रुक्मिणी ने दिव्य शाश्वत प्रेम के कारण एक-दूसरे को वरण किया।

श्रीराजोवाच

भगवान्भीष्मकसुतां रुक्मिणीं रुचिराननाम् ।  
राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥ १८ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-राजा उवाच—राजा ( परीक्षित ) ने कहा; भगवान्—भगवान्; भीष्मक-सुताम्—भीष्मक की पुत्री; रुक्मिणीम्—श्रीमती रुक्मिणीदेवी को; रुचिर—मनोहर; आननाम्—मुख वाली; राक्षसेन—राक्षस नामक; विधानेन—विधि से ( अपहरण करके ); उपयेमे—ब्याह लिया; इति—इस प्रकार; श्रुतम्—सुना गया है।

राजा परीक्षित ने कहा : मैंने सुना है कि भगवान् ने भीष्मक की सुमुखी पुत्री रुक्मिणी से

राक्षस-विधि से विवाह किया ।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने यह स्मृति वाक्य उद्धृत किया है—*राक्षसो युद्धहरणात्*—राक्षस विवाह तब होता है जब दुलहन को प्रतिद्वन्द्वी प्रेमियों से बलपूर्वक हरा जाता है । इसी तरह शुकदेव गोस्वामी स्वयं कह चुके हैं *राज्ञः प्रमथ्य*—रुक्मिणी को पाने के लिए कृष्ण को विरोधी राजाओं को परास्त करना पड़ा ।

भगवन्श्रोतुमिच्छामि कृष्णस्यामिततेजसः ।

यथा मागधशाल्वादीन्जित्वा कन्यामुपाहरत् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

भगवन्—हे प्रभु ( शुकदेव गोस्वामी ); श्रोतुम्—सुनना; इच्छामि—चाहता हूँ; कृष्णस्य—कृष्ण के विषय में; अमित—असीम; तेजसः—जिसका बल; यथा—किस तरह; मागध-शाल्व-आदीन्—जरासन्ध तथा शाल्व जैसे राजाओं को; जित्वा—हराकर; कन्याम्—दुलहन को; उपाहरत्—हर लाए ।

हे प्रभु, मैं यह सुनने का इच्छुक हूँ कि असीम बलशाली भगवान् कृष्ण किस तरह मागध तथा शाल्व जैसे राजाओं को हराकर अपनी दुलहन को हर ले गये ।

तात्पर्य : हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि श्रीकृष्ण जरासन्ध से सचमुच भयभीत थे । हम अगले अध्याय में देखेंगे कि श्रीकृष्ण जरासन्ध तथा उसके सैनिकों को सरलता से हरा देते हैं । अतः हमें कभी भी भगवान् कृष्ण के पराक्रम के विषय में संशय नहीं करना चाहिए ।

ब्रह्मन्कृष्णकथाः पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः ।

को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; कृष्ण-कथाः—कृष्ण की कथाएँ; पुण्याः—पवित्र; माध्वीः—मधुर; लोक—संसार के; मल—कल्मष को; अपहाः—दूर करने वाली; कः—कौन; नु—तनिक भी; तृप्येत—तृप्त होगा; शृण्वानः—सुनते हुए; श्रुत—सुना जाने वाला; ज्ञः—जानने वाला; नित्य—सदा; नूतनाः—नवीन ।

हे ब्राह्मण, ऐसा कौन-सा अनुभवी श्रोता होगा जो श्रीकृष्ण की पवित्र, मनोहर तथा नित्य नवीन कथाओं को, जो संसार के कल्मष को धो देने वाली हैं, सुनकर कभी तृप्त हो सकेगा ?

श्रीबादरायणिरुवाच

राजासीद्धीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ।

तस्य पन्चाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥ २१ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-बादरायणिः— श्री बादरायणि ( बादरायण वेदव्यास के पुत्र शुकदेव ) ने; उवाच—कहा; राजा—राजा; आसीत्—था; भीष्मकः नाम—भीष्मक नामक; विदर्भ-अधिपतिः—विदर्भ राज्य का शासक; महान्—महान्; तस्य—उसके; पञ्च—पाँच; अभवन्—थे; पुत्राः—पुत्र; कन्या—पुत्री; एका—एक; च—तथा; वर—अतीव सुन्दर; आनना—मुख वाली ।

श्री बादरायणि ने कहा : भीष्मक नामक एक राजा था, जो विदर्भ का शक्तिशाली शासक था । उसके पाँच पुत्र तथा एक सुमुखी पुत्री थी ।

रुक्म्यग्रजो रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ।

रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषा स्वसा सती ॥ २२ ॥

**शब्दार्थ**

रुक्मी—रुक्मी; अग्र-जः—सबसे बड़ा; रुक्म-रथः रुक्मबाहुः—रुक्मरथ तथा रुक्मबाहु; अनन्तरः—इनके बाद; रुक्म-केशः रुक्म-माली—रुक्मकेश तथा रुक्ममाली; रुक्मिणी—रुक्मिणी; एषा—वह; स्वसा—बहिन; सती—साधु चरित्र वाली ।

रुक्मी सबसे बड़ा पुत्र था, उसके बाद रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मकेश तथा रुक्ममाली थे ।

उनकी बहिन सती रुक्मिणी थी ।

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ।

गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥ २३ ॥

**शब्दार्थ**

सा—उसने; उपश्रुत्य—सुनकर; मुकुन्दस्य—कृष्ण के; रूप—सौन्दर्य; वीर्य—पराक्रम; गुण—चरित्र; श्रियः—तथा ऐश्वर्य के विषय में; गृह—उसके पारिवारिक घर में; आगतैः—आने वालों द्वारा; गीयमानाः—गाया जाकर; तम्—उसको; मेने—सोचा; सदृशम्—उपयुक्त; पतिम्—पति ।

महल में आने वालों के मुख से जो प्रायः मुकुन्द के बारे में गुणगान करते थे, मुकुन्द के सौन्दर्य, पराक्रम, दिव्य चरित्र तथा ऐश्वर्य के बारे में सुनकर, रुक्मिणी ने निश्चय किया कि वे ही उसके उपयुक्त पति होंगे ।

तात्पर्य : सदृशम् शब्द सूचित करता है कि रुक्मिणी तथा श्रीकृष्ण में एक-जैसे गुण थे अतः स्वाभाविक था कि वे एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट होते । राजा भीष्मक साधु व्यक्ति थे अतएव उनके महल में अनेक साधु-पुरुष आते रहे होंगे । ये साधु-पुरुष अवश्य ही श्रीकृष्ण की महिमा के विषय में मुक्तकण्ठ प्रचार करते थे ।

तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ।

कृष्णश्च सदृशीं भार्या समुद्बोद्धुं मनो दधे ॥ २४ ॥

**शब्दार्थ**

ताम्—उसकी; बुद्धि—बुद्धि के; लक्षण—शुभ शारीरिक चिह्न; औदार्य—उदारता; रूप—सौन्दर्य; शील—उचित व्यवहार; गुण—तथा अन्य व्यक्तिगत गुण के; आश्रयाम्—आगार; कृष्णः—भगवान् कृष्ण; च—तथा; सदृशीम्—उपयुक्त; भार्याम्—पत्नी; समुद्रोद्गमम्—विवाह करने के लिए; मनः—अपना मन; दधे—बनाया।

भगवान् कृष्ण जानते थे कि रुक्मिणी बुद्धि, शुभ शारीरिक चिह्न, सौन्दर्य, उचित व्यवहार तथा अन्य उत्तम गुणों से युक्त है। यह निष्कर्ष निकाल करके कि वह उनके योग्य एक आदर्श पत्नी होगी, कृष्ण ने उससे विवाह करने का निश्चय किया।

**तात्पर्य :** जिस तरह कृष्ण को *सदृशं पतिम्* कहा गया है, उसी तरह रुक्मिणी को *सदृशीं भार्याम्*—श्रीकृष्ण के लिए आदर्श पत्नी कहा गया है। यह स्वाभाविक है क्योंकि श्रीमती रुक्मिणीदेवी कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति हैं।

बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ।  
ततो निवार्य कृष्णाद्विदुक्मी चैद्यममन्यत ॥ २५ ॥

**शब्दार्थ**

बन्धूनाम्—अपने परिवार के लोगों के; इच्छताम्—चाहने से; दातुम्—देने के लिए; कृष्णाय—कृष्ण को; भगिनीम्—अपनी बहन; नृप—हे राजा; ततः—इससे; निवार्य—उन्हें रोककर; कृष्णा-द्विद्—कृष्ण से द्वेष रखने से; रुक्मी—रुक्मी; चैद्यम्—चैद्य (शिशुपाल) को; अमन्यत—मानता था।

हे राजन्, चूँकि रुक्मी भगवान् से द्वेष रखता था अतएव उसने अपने परिवार वालों को, उनकी इच्छा के विपरीत, अपनी बहन कृष्ण को दिये जाने से रोका। उल्टे रुक्मी ने रुक्मिणी को शिशुपाल को देने का निश्चय किया।

**तात्पर्य :** बड़ा भाई होने से रुक्मी ने अपने पद का दुरुपयोग किया और दुर्भावनापूर्ण कार्य किया। इस निर्णय के लिए उसे कष्ट भोगना पड़ गया।

तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ।  
विचिन्त्याप्तं द्विजं कञ्चित्कृष्णाय प्राहिणोद्दरुतम् ॥ २६ ॥

**शब्दार्थ**

तत्—वह; अवेत्य—जानकर; असित—श्याम; अपाङ्गी—जिसकी आँखों के कोर; वैदर्भी—विदर्भ की राजकुमारी; दुर्मना—दुखी; भृशम्—अत्यधिक; विचिन्त्य—सोचकर; आप्तम्—विश्वस्त; द्विजम्—ब्राह्मण को; कञ्चित्—किसी; कृष्णाय—कृष्ण के पास; प्राहिणोत्—भेजा; द्रुतम्—जल्दी से।

श्याम-नेत्रों वाली वैदर्भी इस योजना से अवगत थी अतः वह इससे अत्यधिक उदास थी। उसने सारी परिस्थिति पर विचार करते हुए तुरन्त ही कृष्ण के पास एक विश्वासपात्र ब्राह्मण को

भेजा ।

द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ।  
अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं काञ्चनासने ॥ २७ ॥

**शब्दार्थ**

द्वारकाम्—द्वारका में; सः—वह ( ब्राह्मण ); समभ्येत्य—पहुँच कर; प्रतीहारैः—द्वारपालों के द्वारा; प्रवेशितः—भीतर लाया गया; अपश्यत्—देखा; आद्यम्—आदि; पुरुषम्—परम पुरुष को; आसीनम्—आसीन, बैठा; काञ्चन—सुनहरे; आसने—सिंहासन पर।

द्वारका पहुँचने पर उस ब्राह्मण को द्वारपाल भीतर ले गये जहाँ उसने आदि-भगवान् को सोने के सिंहासन पर आसीन देखा ।

दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनात् ।  
उपवेश्यार्हयां चक्रे यथात्मानं दिवोकसः ॥ २८ ॥

**शब्दार्थ**

दृष्ट्वा—देखकर; ब्रह्मण्य—ब्राह्मणों का ध्यान रखने वाला; देवः—प्रभु; तम्—उसको; अवरुह्य—उतर कर; निज—अपने; आसनात्—सिंहासन से; उपवेश्य—बैठाकर; अर्हयाम् चक्रे—पूजा की; यथा—जिस तरह; आत्मानम्—स्वयं को; दिव-ओकसः—स्वर्ग के वासी।

ब्राह्मण को देखकर, ब्राह्मणों के प्रभु श्रीकृष्ण अपने सिंहासन से नीचे उतर आये और उसे बैठाया । तत्पश्चात् भगवान् ने उसकी उसी तरह पूजा की जिस तरह वे स्वयं देवताओं द्वारा पूजित होते हैं ।

तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमुपगम्य सतां गतिः ।  
पाणिनाभिमृश्यादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥ २९ ॥

**शब्दार्थ**

तम्—उसको; भुक्तवन्तम्—खा चुकने पर; विश्रान्तम्—आराम किया; उपगम्य—पास जाकर; सताम्—साधु-भक्तों का; गतिः—लक्ष्य; पाणिना—अपने हाथों से; अभिमृशन्—दबाते हुए; पादौ—उसके पाँव; अव्यग्रः—बिना क्षुब्ध हुए; तम्—उससे; अपृच्छत—पूछा।

जब वह ब्राह्मण खा-पीकर आराम कर चुका तो साधु-भक्तों के ध्येय श्रीकृष्ण उसके पास आये और अपने हाथों से उस ब्राह्मण के पाँवों को दबाते हुए बड़े ही धैर्य के साथ इस प्रकार पूछा ।

कच्चिद्वज्रश्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसम्मतः ।

वर्तते नातिकृच्छ्रेण सन्तुष्टमनसः सदा ॥ ३० ॥

**शब्दार्थ**

कच्चित्—क्या; द्विज—ब्राह्मणों में; वर—श्रेष्ठ; श्रेष्ठ—हे श्रेष्ठ; धर्मः—धर्म; ते—तुम्हारा; वृद्ध—गुरुजनों के द्वारा; सम्मतः—अनुमोदित; वर्तते—चल रहा है; न—नहीं; अति—अत्यधिक; कृच्छ्रेण—कठिनाई से; सन्तुष्ट—पूर्णतया संतुष्ट; मनसः—मन वाले; सदा—सदैव।

[ भगवान् ने कहा ] : हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ, आपके गुरुजनों द्वारा अनुमोदित धार्मिक अनुष्ठान बिना किसी बड़ी कठिनाई के चल तो रहे हैं न? आपका मन सदैव संतुष्ट तो रहता है न?

तात्पर्य : यहाँ हमने धर्म शब्द का “धार्मिक अनुष्ठान” किया है, यद्यपि इससे संस्कृत शब्द का पूरा अभिप्राय समझ में नहीं आता। कृष्ण का जन्म धर्मनिरपेक्ष समाज में नहीं हुआ था। वैदिक काल के लोग शायद ही ऐसे समाज की कल्पना कर सकते थे जिसमें ईश्वर के विधान का पालन करने की आवश्यकता न हो। अतः उनके लिए धर्म शब्द सामान्य कर्तव्य, उच्चतर सिद्धान्त तथा निश्चित कर्म—ये सभी अर्थ इंगित करने वाला था। ऐसा स्वतःसिद्ध था कि ऐसे कर्तव्य धार्मिक परिधि में आते हैं। किन्तु उन दिनों धर्म कोई विशिष्ट पक्ष या जीवन का विभाग न था अपितु समस्त कार्यों के लिए मार्गदर्शक था। अधार्मिक जीवन को आसुरी माना जाता था और हर बात में ईश्वर का हाथ दिखता था।

सन्तुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ।

अहीयमानः स्वद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥ ३१ ॥

**शब्दार्थ**

सन्तुष्टः—सन्तुष्ट; यर्हि—जब; वर्तेत—पालन करता है; ब्राह्मणः—ब्राह्मण; येन केनचित्—जिस किसी से; अहीयमानः—न्यून नहीं; स्वात्—अपने; धर्मात्—धार्मिक कर्तव्य से; सः—वे धार्मिक सिद्धान्त ( धर्म ); हि—निस्सन्देह; अस्य—उसके लिए; अखिल—हर वस्तु का; काम-धुक्—कामधेनु गाय, किसी भी कामना-पूर्ति के लिए दुही जाने वाली।

जो कुछ भी मिल जाय उससे सन्तुष्ट हो जाना और अपने धार्मिक कर्तव्य से च्युत नहीं होना ये धार्मिक सिद्धान्त ब्राह्मण की सारी इच्छाओं को पूरी करने वाली कामधेनु बन जाते हैं।

असन्तुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ।

अकिञ्चनोऽपि सन्तुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः ॥ ३२ ॥

**शब्दार्थ**

असन्तुष्टः—असन्तुष्ट; असकृत्—बारम्बार; लोकान्—विविध लोकों को; आप्नोति—प्राप्त करता है; अपि—यद्यपि; सुर—देवताओं का; ईश्वरः—स्वामी; अकिञ्चनः—निर्धन; अपि—होते हुए भी; सन्तुष्टः—सन्तुष्ट; शेते—सोता है; सर्व—सारे; अङ्ग—शरीर के अंग; विज्वरः—दुख से रहित।

असन्तुष्ट ब्राह्मण स्वर्ग का राजा बन जाने पर भी एक लोक से दूसरे लोक में बेचैन होकर

भटकता रहता है। किन्तु संतुष्ट ब्राह्मण, अपने पास कुछ न होने पर भी शान्तिपूर्वक विश्राम करता है और उसके सारे अंग कष्ट से मुक्त रहते हैं।

तात्पर्य : जो लोग असन्तुष्ट हैं उनके सारे शरीर में पीड़ा का अनुभव होता है और वे अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं। किन्तु सन्तुष्ट ब्राह्मण, चाहे उसके पास कुछ भी न हो, शान्त तथा स्थिर रहता है और उसके शरीर या मन में कोई कष्ट नहीं रहता।

विप्रान्स्वलाभसन्तुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् ।  
निरहङ्कारिणः शान्तान्नमस्ये शिरसासकृत् ॥ ३३ ॥

#### शब्दार्थ

विप्रान्—विद्वान् ब्राह्मणों को; स्व—अपना; लाभ—लाभ से; सन्तुष्टान्—संतुष्ट; साधून्—साधु; भूत—सारे जीवों का; सुहृत्-  
तमान्—सर्वश्रेष्ठ शुभचिन्तक मित्र; निरहङ्कारिणः—मिथ्या अहंकार से रहित; शान्तान्—शान्त; नमस्ये—नमस्कार करता हूँ;  
शिरसा—सिर के बल; असकृत्—पुनः पुनः ।

मैं उन ब्राह्मणों को बारम्बार अपना शीश नवाता हूँ जो अपने भाग्य से संतुष्ट हैं। साधु, अहंकारशून्य तथा शान्त होने से वे समस्त जीवों के सर्वोत्तम शुभचिन्तक हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी व्याख्या करते हैं कि स्वलाभ का एक अन्य अर्थ भी है “अपने स्व की प्राप्ति” अर्थात् आत्म-साक्षात्कार। इस तरह उन्नत ब्राह्मण कभी भी भौतिक औपचारिकताओं या सुविधाओं पर निर्भर न रह कर अपने आध्यात्मिक ज्ञान से सदैव सन्तुष्ट रहता है।

कच्चिद्ब्रह्म कुशलं ब्रह्मन् राजतो यस्य हि प्रजाः ।  
सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥ ३४ ॥

#### शब्दार्थ

कच्चिद्—क्या, कहीं; वः—तुम्हारा; कुशलम्—कुशलमंगल; ब्रह्मन्—हे ब्राह्मण; राजतः—राजा से; यस्य—जिसका; हि—  
निस्सन्देह; प्रजाः—जनता; सुखम्—सुखपूर्वक; वसन्ति—रहती हैं; विषये—देश में; पाल्यमानाः—रक्षित होकर; सः—वह;  
मे—मुझको; प्रियः—प्रिय।

हे ब्राह्मण, आपका राजा आप लोगों के कुशल-मंगल का ध्यान तो रखता है? निस्सन्देह, जिस राजा के देश में प्रजा सुखी तथा सुरक्षित है, वह मुझे अत्यन्त प्रिय है।

यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ।  
सर्वं नो ब्रह्मगुह्यं चेत्किं कार्यं करवाम ते ॥ ३५ ॥

#### शब्दार्थ

यतः—जहाँ से; त्वम्—तुम; आगतः—आये हो; दुर्गम्—दुर्गम समुद्र; निस्तीर्य—पार करके; इह—यहाँ; यत्—किस; इच्छया—इच्छा से; सर्वम्—सारी वस्तुएँ; नः—हमारे प्रति; ब्रूहि—कहो; अगुह्यम्—गुप्त नहीं; चेत्—यदि; किम्—क्या; कार्यम्—कार्य; करवाम—हम करें; ते—तुम्हारे लिए।

दुर्लघ्य समुद्र पार करके आप कहाँ से और किस कार्य से यहाँ आये हैं? यदि यह गुप्त न हो तो हमें बतलाइये और यह कहिये कि आपके लिए हम क्या कर सकते हैं?

एवं सम्पृष्टसम्प्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ।

लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥ ३६ ॥

### शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; सम्पृष्ट—पूछा गया; सम्प्रश्नः—प्रश्न; ब्राह्मणः—ब्राह्मण; परमेष्ठिना—भगवान् द्वारा; लील—अपनी लीला के रूप में; गृहीत—ग्रहण किये गये; देहेन—अपने शरीरों से; तस्मै—उसको; सर्वम्—हर वस्तु; अवर्णयत्—कह सुनाया।

अपनी लीला सम्पन्न करने के लिए अवतार लेने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् द्वारा इस तरह पूछे जाने पर ब्राह्मण ने उन्हें सारी बात बता दी।

तात्पर्य : गृहीत का अर्थ “पकड़ा” किया जा सकता है, अतः ठीक अंग्रेजी भाषा की तरह इसका अर्थ ‘किसी बात को ध्यान से समझना’ भी हो सकता है। यह इसका सूचक है कि भगवान् कृष्ण का दिव्य शरीर अनुभव किया या जाना जाता है या भक्तों द्वारा पकड़ा जाता है जब भगवान् अपनी दिव्य लीलाएँ प्रदर्शित करने के लिए आते हैं। ये लीलाएँ मनमानी नहीं हैं अपितु जटिल कार्यक्रम के अंशरूप हैं और बद्धजीवों में भगवान् के प्रति प्राकृतिक प्रेम तथा भक्ति जगाकर उन्हें भगवद्धाम ले जाने के लिए भगवान् द्वारा निर्मित तथा निष्पादित की जाती हैं।

श्रीरुक्मिण्युवाच

श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर शृण्वतां ते

निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽद्भुतापम् ।

रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं

त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ३७ ॥

### शब्दार्थ

श्री-रुक्मिणी उवाच—श्री रुक्मिणी ने कहा; श्रुत्वा—सुनकर; गुणान्—गुणों को; भुवन—सारे लोकों के; सुन्दर—हे सौन्दर्य; शृण्वताम्—सुनने वालों के लिए; ते—तुम्हारा; निर्विश्य—प्रवेश करके; कर्ण—कानों के; विवरैः—छेदों से; हरतः—हटाते हुए; अद्भु—उनके शरीरों की; तापम्—पीड़ा; रूपम्—सौन्दर्य; दृशाम्—देखने की इन्द्रिय का; दृशि-मताम्—आँख वालों का; अखिल—समग्र; अर्थ—इच्छापूर्ति का; लाभम्—प्राप्ति; त्वयि—तुममें; अच्युत—हे अच्युत कृष्ण; आविशति—प्रवेश करती है; चित्तम्—चित्त में; अपत्रपम्—निर्लज्ज; मे—मेरे।

[ ब्राह्मण द्वारा पढ़े जा रहे अपने पत्र में ] श्री रुक्मिणी ने कहा : हे जगतों के सौन्दर्य,



आपके गुणों के विषय में सुनकर जो कि सुनने वालों के कानों में प्रवेश करके उनके शारीरिक ताप को दूर कर देते हैं और आपके सौन्दर्य के बारे में सुनकर कि वह देखने वाले की सारी दृष्टि सम्बन्धी इच्छाओं को पूरा करता है, हे कृष्ण, मैंने अपना निर्लज्ज मन आप पर स्थिर कर दिया है।

तात्पर्य : रुक्मिणी एक राजा की पुत्री थी, वह साहसी तथा निडर थी और वह कृष्ण के प्राप्त न होने पर मरना पसन्द करती। यह सब विचार करके उसने एक स्पष्ट खुला पत्र लिखा जिसमें कृष्ण से याचना की गई थी कि वे आकर उसे ले जाँय।

का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप-  
विद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ।  
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या  
काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम् ॥ ३८ ॥

#### शब्दार्थ

का—कौन; त्वा—तुम; मुकुन्द—हे कृष्ण; महती—राजसी; कुल—पारिवारिक पृष्ठभूमि के रूप में; शील—चरित्र; रूप—सौन्दर्य; विद्या—ज्ञान; वयः—युवावस्था; द्रविण—धन; धामभिः—तथा प्रभाव से; आत्म—अपने ही; तुल्यम्—समान; धीरा—जो धीर है; पतिम्—अपने पति रूप में; कुल-वती—अच्छे परिवार वाली; न वृणीत—वरण नहीं करेगी; कन्या—विवाह योग्य तरुणी; काले—ऐसे समय में; नृ—लोगों में; सिंह—हे सिंह; नर-लोक—मानव समाज का; मनः—मनों को; अभिरामम्—आनन्द देने वाले।

हे मुकुन्द, आप वंश, चरित्र, सौन्दर्य, ज्ञान, युवावस्था, सम्पदा तथा प्रभाव में केवल अपने समान हैं। हे पुरुषों में सिंह, आप सारी मानवता के मन को आनन्दित करते हैं। उपयुक्त समय आ जाने पर ऐसी कौन-सी राजकुल की धीर तथा विवाहयोग्य कन्या होगी जो आपको पति रूप में नहीं चुनेगी?

तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरङ्ग जाया-  
मात्मार्षितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ।  
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्  
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥ ३९ ॥

#### शब्दार्थ

तत्—अतः; मे—मेरे द्वारा; भवान्—आप; खलु—निस्सन्देह; वृतः—चुने गये; पतिः—पति रूप में; अङ्ग—प्रिय स्वामी; जायाम्—पत्नी रूप में; आत्मा—अपने को; अर्षितः—अर्पित; च—और; भवतः—आपको; अत्र—यहाँ; विभो—हे सर्वशक्तिमान; विधेहि—स्वीकार करें; मा—कभी नहीं; वीर—वीर का; भागम्—अंश; अभिमर्शतु—छूना चाहिए; चैद्यः—

चेदिराज का पुत्र, शिशुपाल; आरात्—तेजी से; गोमायु-वत्—सियार की तरह; मृग-पते:—पशुओं के राजा सिंह से सम्बन्धित; बलिम्—बलि; अम्बुज-अक्ष—हे कमल-नेत्र।

अतएव हे प्रभु, मैंने आपको अपने पति-रूप में चुना है और मैं आपकी शरण में आई हूँ। हे सर्वशक्तिमान, तुरन्त आइये और मुझे अपनी पत्नी बना लीजिये। हे मेरे कमल-नेत्र स्वामी, किसी सिंह की सम्पत्ति को चुराने वाले सियार जैसे शिशुपाल को एक वीर के अंश को कभी छूने न दीजिये।

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र-

गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः ।

आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं

गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

पूर्त—पुण्य कार्यो ( ब्राह्मणों को भोजन कराना, कुंआ खुदवाना आदि ) के द्वारा; इष्ट—यज्ञादि करना; दत्त—दान; नियम—अनुष्ठान पालन ( यथा तीर्थस्थान जाना ); व्रत—तपस्या का व्रत; देव—देवताओं; विप्र—ब्राह्मणों; गुरु—तथा गुरुओं की; अर्चन—पूजा; आदिभिः—इत्यादि से; अलम्—पर्याप्त; भगवान्—भगवान्; पर—परम; ईशः—नियंत्रक; आराधितः—भक्ति किया हुआ; यदि—यदि; गद-अग्रजः—गद के बड़े भाई, कृष्ण; एत्य—आकर; पाणिम्—हाथ; गृह्णातु—ग्रहण करें; मे—मेरा; न—नहीं; दमघोष-सुत—दमघोष-पुत्र, शिशुपाल; आदयः—इत्यादि; अन्ये—अन्य।

यदि मैंने पुण्य कर्म, यज्ञ, दान, अनुष्ठान-व्रत के साथ साथ देवताओं, ब्राह्मणों तथा गुरुओं की पूजा द्वारा भगवान् की पर्याप्त रूप से उपासना की हो तो हे गदाग्रज, आप आकर मेरा हाथ ग्रहण करें और दमघोष का पुत्र या कोई अन्य ग्रहण न करने पाये।

तात्पर्य : आचार्यों ने इस श्लोक की व्याख्या इस प्रकार की है—“रुक्मिणी को अनुभव हुआ कि केवल एक जीवन के प्रयासों द्वारा कृष्ण को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसलिए उन्होंने श्रीकृष्ण को आने के लिए विश्वस्त करने की आशा हेतु उन पुण्य कर्मों को गंभीरता से इंगित किया जो उन्होंने इस जीवन में तथा पिछले जीवनों में किये थे।”

श्वो भाविनि त्वमजितोद्धने विदर्भान्

गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ।

निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य

मां राक्षसेन विधिनोद्ध वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

श्वः भाविनि—कल; त्वम्—तुम; अजित—हे अजेय; उद्धने—विवाहोत्सव के समय; विदर्भान्—विदर्भ में; गुप्तः—अदृश्य; समेत्य—आकर; पृतना—अपनी सेना के; पतिभिः—नायकों द्वारा; परीतः—घिरा हुआ; निर्मथ्य—दलन करके; चैद्य—

शिशुपाल; मगध-इन्द्र—तथा मगध का राजा, जरासन्ध की; बलम्—सैन्य-शक्ति; प्रसह्य—बलपूर्वक; माम्—मुझको; राक्षसेन विधिना—राक्षस विधि से; उद्धह—विवाह करके ले जाओ; वीर्य—अपने पराक्रम के; शल्काम्—मूल्य रूप में।

हे अजित, कल जब मेरा विवाहोत्सव प्रारम्भ हो तो आप विदर्भ में अपनी सेना के नायकों से घिर कर गुप्त रूप से आयें। तत्पश्चात् चैद्य तथा मगधेन्द्र की सेनाओं को कुचल कर अपने पराक्रम से मुझे जीत कर राक्षस विधि से मेरे साथ विवाह कर लें।

तात्पर्य : श्रील प्रभुपाद ने भगवान् श्रीकृष्ण में इंगित किया है कि राजकुल में उत्पन्न होने के कारण रुक्मिणी को राजनीतिक कामकाज की, निश्चित रूप से, अच्छी पकड़ थी। उन्होंने श्रीकृष्ण को सलाह दी कि वे नगर में अकेले और बिना किसी के देखे प्रवेश करें तथा तब स्वयं अपने सेना-नायकों के बीच में घिर कर रहें जिससे जो भी करना है, उसे वे कर सकें। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने आने वाले युद्ध की तुलना लक्ष्मी प्राप्त करने के लिए भगवान् द्वारा समुद्र के मंथन से की है। इस तरह श्री-रूपी रुक्मिणी इस मंथन से प्राप्त होंगी।

अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धून्-

त्वामुद्धहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ।

पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवयात्रा

यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥

#### शब्दार्थ

अन्तः-पुर—महल में स्त्रियों के कक्ष, रनिवास के; अन्तर—भीतर; चरीम्—घूमने वाले; अनिहत्य—बिना मारे; बन्धून्—तुम्हारे सम्बन्धियों को; त्वाम्—तुमको; उद्धहे—मैं ले जाऊँगा; कथम्—कैसे; इति—ऐसे शब्द कहते हुए; प्रवदामि—मैं बतलाऊँगी; उपायम्—उपाय; पूर्वे-द्युः—एक दिन पहले; अस्ति—है; महती—विशाल; कुल—राजपरिवार के; देव—कुलदेवता के लिए; यात्रा—जुलूस; यस्याम्—जिसमें; बहिः—बाहर; नव—नवीन; वधूः—दुलहन; गिरिजाम्—देवी गिरिजा ( अम्बिका ) के पास; उपेयात्—जाती है।

चूँकि मैं रनिवास के भीतर रहूँगी अतः आप आश्चर्य करेंगे और सोचेंगे कि “मैं तुम्हारे कुछ सम्बन्धियों को मारे बिना तुम्हें कैसे ले जा सकता हूँ?” किन्तु मैं आपको एक विधि बतलाऊँगी: विवाह के एक दिन पूर्व राजकुल के देवता के सम्मान में एक विशाल जुलूस निकलेगा जिसमें दुलहन नगर के बाहर देवी गिरिजा का दर्शन करने जाती है।

तात्पर्य : चतुर रुक्मिणी ने पहले से श्रीकृष्ण द्वारा उठाई जाने वाली आपत्ति भाँप ली थी। वे निश्चित रूप से शिशुपाल तथा जरासन्ध जैसे धूर्तों का दमन करने का विरोध नहीं करेंगे किन्तु वे नहीं चाहेंगे कि अन्तःपुर में उनका मार्ग रोकने वाले रुक्मिणी के सम्बन्धियों को क्षति पहुँचाई जाय या

उनका वध किया जाय। गिरिजादेवी (दुर्गा) तक जाने तथा लौटने वाले जुलूस से कृष्ण को पूर्ण अवसर प्राप्त हो सकेगा कि रुक्मिणी के सम्बन्धियों को बिना क्षति पहुँचाये रुक्मिणी का हरण कर लें।

यस्याङ्घ्रिपङ्कजःस्नपनं महान्तो  
वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ।  
यर्हाम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं  
जह्यामसूत्रतकृशान्शतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥

**शब्दार्थ**

यस्य—जिसके; अङ्घ्रि—चरणों की; पङ्कज—कमल; रजः—धूलि से; स्नपनम्—स्नान करते हुए; महान्तः—महात्मागण; वाञ्छन्ति—लालायित रहते हैं; उमा-पतिः—उमादेवी के पति, शिवजी; इव—जिस तरह; आत्म—अपने; तमः—अज्ञान के; अपहत्यै—नष्ट करने के लिए; यर्हि—जब; अम्बुज-अक्ष—हे कमल-नयन; न लभेय—मैं नहीं पा सकती; भवत्—आपकी; प्रसादम्—दया; जह्याम्—मुझे त्याग देना चाहिए; असून्—अपने प्राण; व्रत—तपस्या द्वारा; कृशान्—दुर्बल हुए; शत—सौ; जन्मभिः—जन्मों के बाद; स्यात्—हो सके।

“हे कमल-नयन, शिवजी जैसे महात्मा आपके चरणकमलों की धूलि में स्नान करके अपने अज्ञान को नष्ट करना चाहते हैं। यदि मुझे आपकी कृपा प्राप्त नहीं होती तो मैं अपने उस प्राण को त्याग दूँगी जो मेरे द्वारा की जाने वाली कठिन तपस्या के कारण क्षीण हो चुका होगा। तब कहीं सैकड़ों जन्मों तक परिश्रम करने के बाद शायद आपकी कृपा प्राप्त हो सके।”

तात्पर्य : श्रीकृष्ण के प्रति दिव्य रुक्मिणी का असामान्य समर्पण आध्यात्मिक स्तर पर ही सम्भव है, संसारी स्नेह के भंगुर जगत में नहीं।

ब्राह्मण उवाच

इत्येते गुह्यसन्देशा यदुदेव मयाहताः ।  
विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥ ४४ ॥

**शब्दार्थ**

ब्राह्मणः उवाच—ब्राह्मण ने कहा; इति—इस प्रकार; एते—ये; गुह्य—गुप्त; सन्देशाः—सन्देश; यदु-देव—हे यदुओं के स्वामी; मया—मेरे द्वारा; आहताः—लाये गये; विमृश्य—विचार करके; कर्तुम्—करणीय; यत्—जो; च—तथा; अत्र—इस बारे में; क्रियताम्—करें; तत्—वह; अनन्तरम्—इसके तुरन्त बाद।

ब्राह्मण ने कहा, हे यदु-देव, मैं यह गोपनीय संदेश अपने साथ लाया हूँ। कृपया सोचें-विचारें कि इन परिस्थितियों में क्या किया जाना चाहिये और उसे तुरन्त ही कीजिये।

तात्पर्य : जब ब्राह्मण आया तो उसने रुक्मिणी द्वारा अपने अन्तःपुर में केवल कृष्ण के निमित्त एकांत में लिखे गये गोपनीय पत्र की सील तोड़ी। रुक्मिणी द्वारा स्वयं चुने गये विश्वासपात्र ब्राह्मण ने

*गुह्य सन्देशः* शब्द का प्रयोग करते हुए यह पुष्टि की है कि उसने सन्देश की गोपनीयता का अतिक्रमण नहीं किया है। केवल भगवान् कृष्ण ने ही उसे सुना। चूँकि रुक्मिणी का विवाह निकट था इसलिए कृष्ण को तुरन्त कार्यवाही करनी थी। *यदु-देव* शब्द सूचित करता है कि प्रबल यदुवंश के स्वामी के रूप में कृष्ण को निर्णय लेना चाहिए और यदि आवश्यक हो तो वे अपने अनुयायियों को साथ ले लेना चाहिए।

*इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “भगवान् कृष्ण के लिए रुक्मिणी-संदेश” नामक बावनवें अध्याय के श्रील प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।*